UNIVERSAL LIBRARY
OU_186057
UNIVERSAL LIBRARY

OSMANIA UNIVERSITY LIBRARY

Call No. H 81 A 76 G   Accession No. G H 2614

Author अरोरा, शिवनाथ

Title गूँजती - रवानी. 1959.

This book should be returned on or before the date last marked below.

गूँजती ध्वनि

(कविता-संग्रह)

शिवनाथ अरोरा

प्रकाशक—
अनुराग प्रकाशन,
३, कृष्ण निवास, बुद्ध बाजार
मुरादाबाद।

प्रथम संस्करण—मई, १९५९
(सर्वाधिकार कवि के अधीन)
मूल्य २ रुपया ५० न० पै०

मुद्रक
प्रतिभा प्रेस,
भट्टी स्ट्रीट, मुरादाबाद।

पूज्य गुरुवर

श्री शिवबालक शुक्ल

को समर्पित

प्राक्कथन

'गीत नहीं ये...' के रचयिता हिन्दी के उदीयमान और भाव-प्रवण कवि श्री शिवनाथ अरोरा के द्वितीय कविता-संग्रह 'गूंजती ध्वनि' के प्राक्कथन के रूप में दो शब्द लिखते हुए मुझे हार्दिक प्रसन्नता का अनुभव हो रहा है। कवि ने अल्पायु में ही दो काव्य-कृतियाँ हिन्दी को भेंट की हैं, यह उसकी काव्य-चेतना की अविरल प्रवहमानता का द्योतक है।

प्रस्तुत संग्रह में कवि की अनुभूति उसका प्रमुख सम्बल है। जीवन का सनातन स्वर विविध छन्द-भंगिमाओं के साथ सहजता से तरंगित हो उठा है। एक सच्चे गीतकार कवि की सृष्टि में जो विशिष्ट रोचक व्यंजन होते हैं, वे इस रचना में यत्र-तत्र सहज रूप में उपलब्ध हैं। 'गूंजती ध्वनि' में एक सफल गीतकार कवि के ऐसे शक्ति-बीज निहित हैं जो, मेरा विश्वास है, फूट-फैल कर कल रंग और सौरभ की क्रीड़ा करेंगे। गीतकार का दायित्व कितना बड़ा है! शिवनाथ जी अपनी अभिव्यक्ति को मानव मात्र की अभिव्यक्ति बनाते हुए व्यथा-मूक मानव-मन का ताला खोलकर उसमें सुरभित प्राण और केसरिया किरण पहुँचा सकेंगे तो यह उनके कवि-जीवन की सिद्धि होगी।

क्रम सं०	कविताएँ		पृष्ठ सं०
२१.	तुम कहते हो	....	५४
२२.	चाँद-सितारों ! तुम चुप रहना	....	५७
२३.	प्यार तुम्हारा मिला	....	५९
२४.	जब से मन में बसा लिया तुमको	....	६१
२५.	सुबह हो गई	....	६३
२६.	दूर कहीं पर कोयल बोली	..	६५
२७.	बोली कोयल	...	६७
२८.	रात आ गई	....	६९
२९.	मुझ से मेरा प्यार न छीनो	....	७१
३०.	यह मेरी कैसी मजबूरी	....	७३
३१.	स्नेह ऐसा पला, दीप ऐसा जला	....	७५
३२.	टूट गये वे सपने सारे	....	७८
३३.	आज दुखी अन्तर रोता है	....	८०
३४.	पंखहीन हो चुका है विकल विहग जब	....	८२
३५.	भूल हुई जीवन में हमने	....	८३
३६.	आओ, लौट चलें अपने घर	....	८५
३७.	चमक रहा नभ में ध्रुव तारा	....	८९
३८.	प्यास की छाँह में	....	९१
३९.	नैन पिंघले तुम्हारी याद आई	....	९४
४०.	चाहता हूँ, याद कर लूँ	....	९५
४१.	गूँजती ध्वनि	....	९७

●

१

गीतों के देवता तुम्हारे द्वार आगये,
इनका पूजन-वंदन कर लो।

ये न चाहते पूजा-भेंट तुम्हारी कुछ भी,
इन्हें चाहिए भक्ति-भरा बस हृदय तुम्हारा;
निश्छल मन में हो जाते साकार स्वयं ही,
इन्हें न लगता दुनिया का आडम्बर प्यारा;
अर्घ्य चढ़ाओ नयनों के अकुलाते जल का,
या करुणा की पलकों के पाँवड़े बिछाकर
तुम इनका अभिनन्दन कर लो।

मत रोको तुम इनको अपने ही आँगन में,
इनको अभी सभी के द्वार दरस देना है,
खाना साग विदुर का और किसी कुब्जा को
श्री-सम्पन्न बनाने हेतु परस देना है;
आज माँग लो तुम भी जो कुछ मन में आये,
इनके वरद् करों के स्पर्श मात्र से अपने
दग्ध हृदय को चंदन कर लो।

छिपा नहीं कुछ इनसे, ये हैं अन्तर्यामी,
जड़-चेतन, सबके ही मन की व्यथा जानते;
लाते करुणा और वेदना सारे जग की,
सबको सुखी बनाने की ही सदा ठानते;
आशुतोष हैं ये, सबका ही विष पी लेते,
करो न चिंता कुछ भी अपने दुख के विष की,
बन्द रुदन औ' क्रंदन कर लो।

गीतों के देवता तुम्हारे द्वार आगये,
इनका पूजन-वंदन कर लो।

●

२

आओ, पल भर मन बहला लें।
जीवन के सब दुःख भूलकर, आओ, क्षण भर ही कुछ गा लें।
आओ, पल भर मन बहला लें।

रोने से सुधियाँ कसकेंगी,
पीड़ाएँ कम हो न सकेंगी;
शेष न हो जाएँ आँसू सब, आओ, बेमन से मुस्का लें।
आओ, पल भर मन बहला लें।

सम्भव है, कल हम खो जाएँ,
दिवस न ये अपने हो पाएँ;
आज हमारा है जो उसमें, आओ, कल की बात भुला लें।
आओ, पल भर मन बहला लें।

जो कुछ भी जीवन में पाया,
कल अपना था, आज पराया;
हों न दुखी खोने, पाने से, आओ, कुछ खो दें, कुछ पा लें।
आओ, पल भर मन बहला लें।

•

३

आज दृगों में सावन छाया।
संचित था जो ज्वार युगों से, वह नभ में बन घन मँडराया।
आज दृगों में सावन छाया।

प्यासी है धरती जीवन की,
काया अकुलाती यौवन की;
उमड़ पड़ा जो उदधि हृदय का पलक-पुलिन से जा टकराया।
आज दृगों में सावन छाया।

भूल गया था पथ निर्जन में,
भटका मृगतृष्णा के वन में;
सुख का सूरज डूब चला अब, लौट दुखों का पाहुन आया।
आज दृगों में सावन छाया।

जग का कोना कोना सूना
पाकर मन का दुख था दूना;
पीड़ा का वरदान मिला क्या, मैंने निज जीवन-धन पाया।
आज दृगों में सावन छाया।

४

पीड़ा का दीपक जलता है।
जलते-जलते बुझ न पा रहा, आहों का अन्धड़ चलता है।
पीड़ा का दीपक जलता है।

है अनन्त वर्त्तिका विरह की,
स्नेह आयु का चुक न पा रहा,
ऐसा ज्वार उठा है मन में,
वेग अश्रु का रुक न पा रहा;
तममय पथ है किन्तु कारवाँ नयनों का अविरत ढलता है।
पीड़ा का दीपक जलता है।

है प्रवंचना जीवन का क्रम
फिर भी मैं जीवित हूँ अब तक,
तम के कितने उदधि पी चुका
फिर भी आलोकित हूँ अब तक;
जाने कैसा मोह मिला जो तन, मन, प्राणों को छलता है।
पीड़ा का दीपक जलता है।

ऐसी कोई मजबूरी है
जिसे न मैं समझा पाता हूँ,
ऐसा कोई दर्द मिला है
जिसको गीतों में गाता हूँ;
किया, अनकिया है कुछ ऐसा जिस पर हृदय हाथ मलता है।
पीड़ा का दीपक जलता है।

●

५

मुझको पीड़ाएं सहने दो।
और अधिक निखरूँगा सोने-सा, तुम ज्वाला में दहने दो।
मुझको पीड़ाएँ सहने दो।

अभी मिलावट है कुछ मुझमें
दुनिया के दूषण-कल्मष की,
मेरा सच्चा मूल्य परखना
बात नहीं है सबके वश की;
धुल जायगा कल्मष सारा, नयनों से आँसू बहने दो।
मुझको पीड़ाएँ सहने दो।

है न कसौटी जग में कोई
जिसपर मुझको कस पाओगे,
मुझे परखने का दम भरते
तो भग्नाश चले जाओगे;
मुझसे प्रश्न करो मत कुछ भी, स्वयं मुझे सब कुछ कहने दो।
मुझको पीड़ाएँ सहने दो।

मुझको झूठी हमदर्दी की
कुछ भी तो परवाह नहीं है,
दुख से ही संतुष्ट सदा मैं,
सुख पाने की चाह नहीं है;
मेरी दशा सुधारो मत तुम, जैसा रहता हूँ रहने दो।
मुझको पीड़ाएँ सहने दो।

●

६

मैं पीड़ा में सुख पाऊँगा।
नयनों के सब आँसू पीकर, मैं विघ्नों में मुस्काऊँगा।
मैं पीड़ा में सुख पाऊँगा।

डर जाऊँगा किसी लहर से,
मुझे न समझो इतना कायर,
माँगूं तृण का भी अवलम्बन,
मुझमें इतना भय न उजागर;
मैं तो भँवरों से खेला हूँ, तट तक कभी नहीं जाऊँगा।
मैं पीड़ा में सुख पाऊँगा।

मुझसे टकराईं बाधाएं
किंतु स्वयं ही चूर हो गईं,
आईं कितनी ही झंझाएँ,
मुझे अचल पा दूर हो गईं;
वज्र बन गया है यह मन अब, हिम सम इसे न पिघलाऊँगा।
मैं पीड़ा में सुख पाऊँगा।

मैं मानव हूँ, दानवता के
घात और प्रतिघात सहूँगा,
संघर्षों में इस पशुता के
पलता मैं दिन-रात रहूँगा;
छलमय जग में प्रेम-शांति के गीत सदा ही मैं गाऊँगा।
मैं पीड़ा में सुख पाऊँगा।

●

७

यह मेरा कैसा पागलपन !
चाह रहा मैं आज तुड़ाना धरती की मिट्टी के बन्धन ।
यह मेरा कैसा पागलपन !

फैला अभिलाषाओं के कर
उमड़ पड़ा इस उर का सागर,
चाँद प्राप्त करने को मचला शिशु-सा यह मेरा भोला मन ।
यह मेरा कैसा पागलपन !

फड़क उठे हैं पङ्ख निराले,
उड़ने को उत्सुक मतवाले,
चाह रहे ये भू से उड़कर करना विस्तृत नभ का चुम्बन।
यह मेरा कैसा पागलपन!

नयनों में बन्दी वे सपने
जो न हुए हैं अब तक अपने,
चाह रहे हैं वे भी करना, सत्य-सुमन बन सुरभित उपवन।
यह मेरा कैसा पागलपन!

८

जब भी तेरी सुधि आ जाती,
ओ बीते मादक क्षण, तब ही मेरी जड़ पीड़ा मुस्काती।
जब भी तेरी सुधि आ जाती।

तब अतीत की मुरली मुखरित
करती तन-मन को रस-पूरित,
और अनागत की आशङ्का मन से दूर कहीं मँडराती।
जब भी तेरी सुधि आ जाती।

मदिर स्वप्न कुछ गाते आते,
बीती बातें फिर दुहराते,
और कल्पना निज सौरभ का इस जीवन में जाल बिछाती।
जब भी तेरी सुधि आ जाती।

हो जाती हैं सरस व्यथाएँ,
स्मृति में आतीं विगत कथाएँ,
और हृदय की विफल कामना, निःश्वासों का साज सजाती।
जब भी तेरी सुधि आ जाती।

बाँध लिया है अनदेखी रेखाओं ने,
कैसे छुटकारा मिल पायेगा मुझको ?

जितना मैं छटपटा रहा
उतने बन्धन कसते,
मेरी ही इच्छाओं के हैं
नाग मुझे डसते;
खोज रहा हूँ मैं उस मणि को
जो न कभी मिलती,
पाल रहा हूँ ऐसी पीड़ा
जो न कभी झिलती;

बाँध लिया है चिर अतृप्त तृष्णाओं ने,
कैसे छुटकारा मिल पायेगा मुझको ?

मरु-मरीचिका-से आकर्षण
छलते पग-पग पर,
दूर सभी हो जाते, जब मैं
बढ़ता डगमग कर;
उलझ गया है यह मन ऐसा
अपने ही भ्रम में,
परिवर्तन हो पाता कभी न
जीवन के क्रम में;
बाँध लिया है अनजानी बाधाओं ने,
कैसे छुटकारा मिल पायेगा मुझको ?

पथ का है विस्तार अनन्त, न
अन्त कभी आता,
लक्ष्य न मिलता कभी किन्तु यह
मन बढ़ता जाता;
थके-थके-से प्राण सदा ही
असंतुष्ट रहते,
दुख पाते हैं पाकर उसको
जिसको सुख कहते;
बाँध लिया है अनबूझी शंकाओं ने
कैसे छुटकारा मिल पायेगा मुझको ?

●

१०

भग्न तन लिये,
भ्रमित मन लिये,
कैसे जीवित रहता हूँ,
यह मैं कैसे समझाऊँ ?

जब मुझ में कुछ पलता है,
जब मेरा कुछ जलता है,
जब मुझ पर कुछ ढलता है,
जब मुझको कुछ छलता है,
तब चुप रहकर,
सब कुछ सहकर,
कुछ न किसी से कहता हूँ,
यह मैं कैसे समझाऊँ ?

ज्वार अनेकों आते हैं,
मुझे बहा ले जाते हैं,
प्राण चैन कब पाते हैं,
नैन नीर भर लाते हैं;
सम्हल-सम्हल कर,
बदल-बदल कर,
किस धारा में बहता हूँ,
यह मैं कैसे समझाऊँ ?

मधुऋतु आ जाती मनहर,
चल जाते मनसिज के शर,
किंतु तभी छाता पतझर,
आशाएँ मिटती सत्वर;
तब रुक-रुक कर,
कुछ झुक-झुक कर
निज दुख कैसे सहता हूँ,
यह मैं कैसे समझाऊँ ?

स्नेह दीप का चुक जाता,
बढ़ा कारवाँ रुक जाता,
दृश्यमान सब लुक जाता,
उठा शीश फिर झुक जाता;
विहर-विहर कर
सिहर-सिहर कर,
किस ज्वाला में दहता हूँ,
यह मैं कैसे समझाऊँ ?

भग्न तन लिये,
भ्रमित मन लिये,
कैसे जीवित रहता हूँ,
यह मैं कैसे समझाऊँ ?

११

तुमने जाने-अनजाने ही मुझे बहुत सम्मान दिया।

धरती का अवलम्ब न कम था,
दिया मुझे नभ का बन्धन,
सीमाओं का उदधि अगम था,
दिया मुझे निःसीम गगन;
पङ्ख कतर नभ में उड़ने का अकुलाता अरमान दिया।

अपना ही संसार बहुत था,
लोक दिया क्यों अनजाना ?
दुख से ही परिचय काफ़ी था,
व्यर्थ तुम्हें क्यों पहचाना ?
तृप्ति न दी पर भरमाती मृगतृष्णा का अनुमान दिया।

विस्मृति का सुख भुला रहा था,
दुःख दिया चेतनता-सा,
तन्मयता का विभव अधिक था,
प्रेम दिया निर्धनता-सा;
मिट्टी के पुतले को सपनों का चंचल वरदान दिया।

स्वयं अकिंचनता को पाकर
मैंने विभव न चाहा था,
किंतु तुम्हारे परिचय-वैभव
ने तो साथ निबाहा था;
भिक्षु कामना को तुमने ही चिर अभाव का दान दिया।

मरने के थे लाख बहाने,
जीने के केवल तुम ही,
खोने को थी सारी दुनिया,
पाने को केवल तुम ही;
इतना ही क्या कम है, तुमने मुझे सिसकता गान दिया ।

•

१२

आज तुम पास नहीं और मन मचल रहा ।

सपनों की पलकों में आँसू छलक रहे,
यादों के झुरमुट में तुम ही झलक रहे;
आस नहीं टूटती,
बेबसी न छूटती;
आज याद आये तुम और दर्द पल रहा ।
आज तुम पास नहीं और मन मचल रहा ।

दूर है प्रकाश और तम सघन छा रहा,
साँस-साँस है उदास, जीवन अलसा रहा;
दूर मधुमास हुआ,
पतझर का वास हुआ,
आज तुम रूठ गये और युग बदल रहा।
आज तुम पास नहीं और मन मचल रहा।

बजती सितार का जैसे स्वर डूब चुका,
प्यार के खुमार से जैसे मन ऊब चुका,
ऐसा ही लग रहा,
दर्द नया जग रहा,
आज प्राण सूने हैं, जीवन भी छल रहा।
आज तुम पास नहीं और मन मचल रहा।

●

१३

स्नेह बरसाने चला हूँ।
खो गया हूँ क्योंकि इस क्षण मैं तुम्हें पाने चला हूँ।
स्नेह बरसाने चला हूँ।

मौन अब तक जो रहे स्वर
वे न तुम तक पहुँच पाये,
मेघ जो घुमड़े हृदय में
नयन में बन अश्रु छाये;
किंतु आँसू रोककर मैं आज मुस्काने चला हूँ।
स्नेह बरसाने चला हूँ।

मिल गया संसार, जब भी
मैं तुम्हारे पास आया,
हो गया यह हृदय तन्मय
जब तुम्हारा गीत गाया;
तार कस लो आज अन्तिम बार मैं गाने चला हूँ।
स्नेह बरसाने चला हूँ।

बँध न पाया आज तक मैं
मुक्ति के निर्बल करों में,
थे सबल बन्धन तुम्हारे,
बाँध लाये अक्षरों में;
दृढ़ तुम्हारा पाश, अपने भाव बँधवाने चला हूँ।
स्नेह बरसाने चला हूँ।

●

१४

जब तुम मेरे पास न होते।
ज्ञात न हो पाता, तब मेरे प्राण हँसा करते या रोते।
जब तुम मेरे पास न होते।

रात न आती, दिवस न आता,
यह जीवन यों ही कट जाता;
किंतु साँस के पागल पंछी पलते रहते स्वप्न सँजोते।
जब तुम मेरे पास न होते।

उगता स्मृति का चाँद गगन में,
ज्वार उठा करता इस मन में;
लगता है दो तट हैं हम जो पास न आते, दूर न खोते ।
जब तुम मेरे पास न होते ।

दूर कहीं होता स्वर-संगम,
इस मन को हो जाता दिग्भ्रम;
पीड़ा से पिघले आँसू तब मृदु गीतों का हार पिरोते ।
जब तुम मेरे पास न होते ।

•

१५

आज नहीं सो पाऊँगा मैं ।
तार विकल हो जाएँ चाहें किंतु रात भर गाऊँगा मैं ।
आज नहीं सो पाऊँगा मैं ।

तुमने ही तो गरल दिया है,
मैंने अमृत समझ पिया है;
आज नशीले स्वप्न तोड़कर, रोकर रात बिताऊँगा मैं ।
आज नहीं सो पाऊँगा मैं ।

रूठे तुम, यह नई बात क्या ?
पास न तुम, यह नई रात क्या ?
तारों से मनुहार सीखकर तुमको आज मनाऊँगा मैं।
आज नहीं सो पाऊँगा मैं।

जादू किसने कर डाला है,
दीपक यह बुझने वाला है;
मुझे न डर है, जान बूझकर तम में ही खो जाऊँगा मैं।
आज नहीं सो पाऊँगा मैं।

१६

मत आओ तुम मेरे पास।
तुम्हें प्राप्त कर बढ़ जाती है तन, मन, प्राणों की यह प्यास।
मत आओ तुम मेरे पास।

माना, यह जीवन छलना है
किन्तु अभी आगे चलना है,
इसीलिए तो काँटों पर चलने का करता हूँ अभ्यास।
मत आओ तुम मेरे पास।

माना, सब कुछ सूना लगता,
तुम बिन यह दुख दूना लगता;
किंतु तुम्हें पाकर भी तो यह जीवन होता अधिक उदास।
मत आओ तुम मेरे पास।

मेरे पास न होते तुम जब,
मीठी स्मृतियाँ जग जातीं तब,
इस मन में दो पल को ही तब छा जाता मधुरिम मधुमास।
मत आओ तुम मेरे पास।

साथ तुम्हारे पथ कट जाता,
और राह का दुख बँट जाता,
किंतु प्राप्त करना न चाहता, मैं यह क्षणभंगुर उल्लास।
मत आओ तुम मेरे पास।

●

१७

बीत चुका वह मेरा बचपन ।
अब न रहे वे मीठे सपने, अब न रहा वैसा भोलापन ।
बीत चुका वह मेरा बचपन ।

कभी चाहता था पाना मैं
नभ का चाँद करों में अपने,
अब तो छाया भी छूने से
लगता है मेरा तन तपने;
हाथ बड़े हो गये, फैलते
अधिक, किंतु पग तो सीमित हैं,
तृप्ति न मिल पाई है, मन में
केवल तृष्णाएँ संचित हैं;
कहाँ मुक्त थे पङ्ख विहग के, कहाँ मिला धरती का बंधन !
बीत चुका वह मेरा बचपन ।

रात रुपहली, दिवस सुनहरे
अब न मुझे बहलाया करते,
अब तो तारे, चाँद और रवि
मुझको नित्य जलाया करते;
तब तो अपनी ही दुनिया थी,
अब दुनिया भर का रोना है,
तब तो पाना ही पाना था,
अब बस खोना ही खोना है;
मुक्त हास खो गया कहीं वह, अब तो जीवन भी है क्रंदन।
बीत चुका वह मेरा बचपन।

तब तो दूर अनागत की ही
छाया का सुखप्रद सम्बल था,
तब न जानता था मैं, वह सब
मरु-मरीचिका का ही जल था;
बीत चुका है जो भी, अब तो
याद उसे कर पछताता हूँ,
तब भविष्य की बाँह पकड़ता,
अब गत से मन बहलाता हूँ;
हैं यथार्थ कटु इस जीवन के, और सभी आदर्श प्रवंचन।
बीत चुका वह मेरा बचपन।

क्या फ़िर से आरम्भ न होगी
मेरे इस जीवन की गाथा ?
क्या फिर प्राप्त न हो पायेगा
प्राणों में जो रस बरसा था ?
लौट न पायेंगे क्या मेरे
टूटे मन के टूटे सपने ?
क्या हो सकता नहीं, कभी यह
बचपन फिर से लगे पनपने ?
यदि यह सब हो सकता हो तो लौटा सकता हूँ निज यौवन।
फिर लौटे यदि मेरा बचपन।

●

१८

मेरी कोई राह नहीं है ।
चलता ही जाता हूँ, मुझको काँटों की परवाह नहीं है ।
मेरी कोई राह नहीं है ।

पाँव मिले हैं, इसीलिए तो
चलता ही रहता जीवन में,
थक जाता हूँ पर न कभी मैं
लेता हूँ विश्राम भवन में;
यद्यपि सफ़र बहुत लम्बा है
फिर भी मुझको थकन न होती,
चल पाता कोई कब, जिसमें
बढ़ने की है लगन न होती;
मैंने तो बढ़ना ही सीखा, रुकने की कुछ चाह नहीं है ।
मेरी कोई राह नहीं है ।

जीवन गति की ही संज्ञा है,
चलते रहना प्राणों का प्रण,
साँसें ही तो बढ़ते पग हैं
जो रुक सकते हैं न किसी क्षण;
तन पर काँटे चुभते, मन पर
कोई असर नहीं होता है,
पर यदि मन में दर्द जागता
तब तन का कण-कण रोता है;
तन की गहराई नापी है, पर मन की कुछ थाह नहीं है।
मेरी कोई राह नहीं है।

चलते रहकर ही तो धरती
पा लेती है नभ की मञ्जिल,
गगन क्षितिज पर झुक आता है
और धरा में जाता है मिल;
अभिलाषाएँ बँध आती हैं
श्रम की अविचल सीमाओं में
और असम्भव भी बँध जाता
सम्भव की मृदु रेखाओं में;
किन्तु न पा सकता कोई कुछ, यदि मन में उत्साह नहीं है।
मेरी कोई राह नहीं है।

बाधाएँ तो क्षणभंगुर हैं,
उनसे डरना कायरता है,
पौरुषयुत हो या कि कापुरुष,
मनुज हर दशा में मरता है;
इसीलिये पीड़ाएं पीकर,
काँटों को भी फूल समझकर
मञ्जिल तक बढ़ता जाऊंगा
पथ को पग की धूल समझकर;
साहस के पुतले के मुख से कभी निकलती आह नहीं है।
मेरी कोई राह नहीं है।

●

१९

राही, मत तुम कहीं ठहरना ।
थक जाएं कितना ही पग ये, पर पथ में विश्राम न करना ।
राही, मत तुम कहीं ठहरना ।

यह तो सच है, राह कठिन है,
और लक्ष्य भी बहुत दूर है,
किन्तु आज चलने का दिन है
यदपि नियति भी बहुत क्रूर है;
शूल चुभें चाहें कितने ही, पर तुम पल भर आह न भरना ।
राही, मत तुम कहीं ठहरना ।

सुख देती तरुओं की छाया,
बैठ न जाना किन्तु यहाँ पर,
यह भी जीवन की है माया,
इसमें है विश्राम कहाँ पर !
बढ़ते रहना निर्भय होकर, बाधाओं से कभी न डरना ।
राही, मत तुम कहीं ठहरना ।

लुभा रहे बीते आकर्षण
पर न कहीं विचलित हो जाना,
कर न बैठना आत्म-समर्पण,
उचित नहीं पथ में सुस्ताना;
दृष्टि रहे केवल मञ्जिल पर, चाहे जीना हो या मरना ।
राही, मत तुम कहीं ठहरना ।

●

२०

कवि जब गाता।
धरती की पीड़ा थम जाती, नभ का क्रंदन भी रुक जाता।
कवि जब गाता।

जग की व्यथा-कथा की निधि को
कवि अपने शब्दों में भरता
और मनुज के मौन व्रणों को
निज वाणी से मुखरित करता;
अपने गीतों की गागर में नयनों का सागर भर लाता।
कवि जब गाता।

थके, निराश हृदय को देता
कवि ही नव आशा का सम्बल,
खोये, सोये प्राणों में भी
मचा दिया करता है हलचल;
अपनी करुणा के हिमकर से, उर-वारिधि में ज्वार उठाता।
कवि जब गाता।

उसका अपना स्वार्थ नहीं कुछ,
वह सबका परमार्थ साधता,
अपनी पीड़ा तुच्छ समझकर
सब की पीड़ा गाँठ बाँधता;
बूंद-बूंद कर सोख सभी का दुख सुख का बादल बन छाता।
कवि जब गाता।

उसका अपना अलग राग है,
उसकी अपनी अलग कथा है,
उसकी अपनी अलग ज़िन्दगी,
उसकी अपनी अलग व्यथा है;
किन्तु न अपना कुछ भी जग को कभी बताता, सभी छिपाता।
कवि जब गाता।

कोई उसका दुख न जानता,
कोई उसको कवि न मानता,
क्योंकि न रहता वह महलों में,
कुटियों की ही ख़ाक छानता;
रहता भू पर, उड़ता नभ में, रखता दोनों से ही नाता।
कवि जब गाता।

•

२१

तुम कहते हो, मैं गीतों में गाऊँ जग की रीत को,
मन कहता है, दुलरा लूं मैं अपनी पागल प्रीत को।

जग के संघर्षों ने तोड़ा
हो जिनको, वे रो भी लें,
चाहें तो अपने आँसू से
वे पीड़ाएँ धो भी लें;
मै क्यों रोऊँ, मुझे व्यथाएँ
अब तक नहीं झुका पाईं,
संघर्षों की आँधी पथ से
मुझे न कभी डिगा पाईं;

तम कहते हो, कूद पड़ूं मैं संघर्षों में धरती के,
मन कहता है, दुहरा लूं मैं नभ के टूटे गीत को।

घाव भरा करते कब, होते
हरे सदा सहलाने से,
दुःख बाँटने से कब बँटता,
बढ़ जाता बहलाने से;
चाहूँ तो दुख और व्रणों को
कम करने का यत्न करूँ,
पर कैसे दुख के सागर से
पैदा सुख के रत्न करूँ ?
तुम कहते हो, दुखियों का दुख-दर्द देख लूँ मैं जाकर,
मन कहता है, आज मना लूँ अपने रूठे मीत को ।

रोने-धोने से क्या बनता,
आँसू व्यर्थ बहा करते,
युग-युग से संचित दुख-गाथा
सबसे व्यर्थ कहा करते;
दुःख हार का, खुशी विजय की,
दुनिया इनमें मग्न सदा,
कौन कभी देखा करता है
मेरे जीवन की विपदा ?
तुम कहते हो, विजय बना लूँ जग की रोती हार को,
मन कहता है, हार बना लूँ अपनी गर्वित जीत को ।

आज हँसा जो, रोता कल, यह
है दुनिया का शाश्वत क्रम,
रुदन को हँसी में परिवर्त्तित
करने का गौरव है भ्रम;
होता है जो, बीत चुकेगा
जब, कुछ और नया होगा,
ज्ञात सभी को, होता है क्या,
ज्ञात नहीं कल क्या होगा;
तुम कहते हो, बीती बातें आज भुला दूँ मैं मन से,
मन कहता है, जीवित कर लूँ अपने सुखद अतीत को।

•

२२

चाँद-सितारों ! तुम चुप रहना,
उनसे मेरी बात न कहना ।

अभी लगी हैं भीगी पलकें,
सुलझ गई हैं उलझी अलकें;
किरनों के आँसू बरसाना,
पर निज दुख मन ही मन सहना ।

भुला सकूँगा मैं उनको कब ?
याद सतायेगी मुझको जब;
मेरे सपने सीख गये हैं
आँसू की धारा में बहना।

पगली नींदें अटक न जाएँ,
स्वप्न नयन में भटक न जाएँ;
खोयी, सोयी किस्मत को मत
देने लगना कहीं उलहना।

•

२३

प्यार तुम्हारा मिला तो मुझे सब कुछ मिल गया ।

दर्शन ने दी दृष्टि, निकटता ने दी सृष्टि मुझे,
स्मिति ने मधुऋतु, रोदन ने दी शीतल वृष्टि मुझे;
मुरझाया यह हृदय-सुमन अनजाने खिल गया ।
प्यार तुम्हारा .... ॥ १ ॥

भूल गया मैं सब कुछ अपना, सपना हुआ सभी,
याद तुम्हें जब किया, जगत सब विस्मृत हुआ तभी;
ध्यान तुम्हारा किया जभी, जप तप सब हिल गया।
प्यार तुम्हारा.....॥ २ ॥

जलन बनी शीतलता, पीड़ा पुष्पलता कोमल,
रुदन हास बन गया, दिया जब तुमने निज सम्बल;
सुख पाया तुमसे तो जग का दुख भी झिल गया।
प्यार तुम्हारा.....॥ ३ ॥

२४

जब से मन में बसा लिया तुमको,
अपना सब कुछ बना लिया तुमको।

ज़िन्दगी में नई बहार आई
जब से सपनों में पा लिया तुमको।

आँसुओं से भिगो लिया दामन
जब से गीतों में गा लिया तुमको।

लगता है, घट गया है गम मेरा
जब से दुखड़ा सुना लिया तुमको।

अब न किस्मत मुझे बुरी लगती
जब से किस्मत बना लिया तुमको।

•

२५

सुबह हो गई।
मादक सुधियों-से सपनों की भीड़ न जाने कहाँ खो गई।
सुबह हो गई।

चटक उठी कलियाँ उपवन में,
मुक्त सुरभि उड़ चली पवन में;
तम का विषमय रस पीकर वह तारों की बारात सो गई।
सुबह हो गई।

भ्रमर भ्रमित हो गये मधुप बन,
मधु पीकर खो गये मुग्धतन;
चुभे शूल, नव पीड़ा जागी, ऊषा की आँखें भिगो गई।
सुबह हो गई।

नई तान छेड़ी विहगों ने,
गूंज उठे नभ के सब कोने;
जागी नई किरन अलसाई जो धरती का कलुष धो गई।
सुबह हो गई।

•

२६

दूर कहीं पर कोयल बोली।
आम्र-मञ्जरी सफल हो गई, उपवन ने फैला दी झोली।
दूर कहीं पर कोयल बोली।

नरुवर हँसे, हँसी तरुणाई,
सुमन खिले, मधुऋतु मुस्काई;
किलक उठीं मधु-भीनी कलियाँ,
नवल रंग में रंगीं तितलियाँ;
लतिकाओं की बाँह पकड़कर, किरणों ने भी खेली होली।
दूर कहीं पर कोयल बोली।

बिखरे रंग, अंग सब निखरे,
पी मकरन्द भ्रमर सब सिहरे;
नाचा सौरभ, थिरके पल्लव,
वृन्त-वृन्त पर नर्त्तन अभिनव;
अल्हड़ता उन्मत्त हो उठी, मलयानिल की काया डोली।
दूर कहीं पर कोयल बोली।

सुधियों की मुरली मुखरित है,
पीड़ा की वीणा झंकृत है;
निःश्वासों के नूपुर बजते,
आज पंचशर फिर से सजते;
ताल दे रहा विरह व्यथा की, नाच रही अभिलाषा भोली।
दूर कहीं पर कोयल बोली।

●

२७

बोली कोयल,
शायद तुमने याद किया मुझको !

मधुऋतु आई, नया रूप पा प्रकृति हँसी जैसे,
ऐसे में तुमसे वियुक्त हो दुःख सहूँ कैसे ?
मौन हुआ, कण्ठावरोध से बोल न पाता मैं;
हिचकी आई,
शायद तुमने याद किया मुझको ।

उपवन हंसा, तुम्हीं ने मानो बिखराये मोती,
सुषमा-सरिता बही हृदय के सब कल्मष धोती;
मधुर पवन का स्पर्श सुखद पा, अह्लादित होकर
सुमन हँस पड़े,
शायद तुमने याद किया मुझको।

गतिमय हुआ अचेतन मन, उन्मन होता प्रतिपल,
आज दिखाई देता उठता फिर से तमसाँचल;
दर्द हृदय का उमड़ा फिर से, तन, मन, जीवन में
जागी पीड़ा
शायद तुमने याद किया मुझको।

जीने की आशा फिर से बलवती हुई बरबस,
आज लुटाना चाह रहा मन अनजाने सरबस;
रोम-रोम में, साँस-साँस में, कण-कण, पल-पल में
मचती हलचल,
शायद तुमने याद किया मुझको।

२८

रात आ गई।
दीप जल उठे नभ के, कोई विरहिन दीपक-राग गा गई।
रात आ गई।

दिन का दिल अब डूब गया है,
किसने ऐसी कसक जगा दी?
सन्ध्या के अरमान सुलगते,
किसने ऐसी आग लगा दी?
भूल हुई ऐसी क्या नभ से जो शशि जैसा सितम ढा गई?
रात आ गई।

सागर की फैली बाँहों में
मुग्ध चाँदनी ने दृग खोले,
सिहर उठी लहरों-सी काया,
मिले परस्पर दो मन भोले;
रजनीगन्धा ईर्ष्या से भर सौरभ के काँटे बिछा गई!
रात आ गई।

विहग चहकने लगे विरह के,
निःस्वासों को नींद न आई,
मुखर हुई नीरवता, सपने
जाग उठे लेकर अँगड़ाई;
थिरक उठी विह्वलता उर की, अपना अवगुंठन उठा गई।
रात आ गई।

●

२९

मुझसे मेरा प्यार न छीनो।
मेरे जीवन की चिर संगिन, पीड़ा का आधार न छीनो।
मुझसे मेरा प्यार न छीनो।

आँसू मेरे प्रतिवेशी है,
बिना बुलाये आजाते है,
तप्त हुए नयनों के नभ में
सुखद मेघ बन छा जाते हैं;
मिला किसी स्वर्गीय व्यथा से मुझको यह उपहार, न छीनो।
मुझसे मेरा प्यार न छीनो।

मुझको अपना दुख काफी है,
दुनिया मे मेरा क्या नाता,
रहता मग्न स्वयं में यदि मैं,
कभी किसी का है क्या जाता;
बसा लिया है अलग हृदय ने, सपनों का संसार न छीनो।
मुझसे मेरा प्यार न छीनो।

मेरा प्यार मुझे छलना यदि
तो तुम क्यों रोते दुख पाकर ?
डूब रहा मैं जान-बूझकर
तो तुमको क्यों लगता है डर ?
नौका खोकर मिल पाई है, मुझसे यह मझधार न छीनो।
मुझसे मेरा प्यार न छीनो।

•

३०

यह मेरी कैसी मजबूरी !
जब भी तुमसे कहता हूँ कुछ, बात नहीं हो पाती पूरी ।
यह मेरी कैसी मजबूरी !

सुना चुका हूँ इस दुनिया में
अपनी बात सभी के आगे,
सुनी सभी ने रस ले-लेकर
किन्तु समझ पाये न अभागे;
साहस करके आज आगया अपनी बाते तुम्हें सुनाने,
सुनी न तुमने भी यदि, रह जायेगी जीवन-कथा अधूरी ।
यह मेरी कैसी मजबूरी ।

साथ तुम्हारा प्रिय लगता है
इसीलिये छाया-सा पीछे
दौड़ा करता हूँ मैं जैसे
अनजानी माया के पीछे;
यह मेरा दुर्भाग्य, न पाता हूँ मैं तुमको या छाया को,
आता जितना पास तुम्हारे उतनी बढ़ जाती है दूरी।
यह मेरी कैसी मजबूरी!

मेरे भी कुछ लक्ष्य निराले
पास नहीं पाता हूँ जिनको,
मेरी भी कुछ सीमाएँ हैं
लाँघ नहीं पाता हूँ जिनको;
मुझे मिली है गति कुछ ऐसी जो हरदम दुर्गति करती है,
भागा फिरता हूँ मैं मृग-सा, पर कब मिल पाती कस्तूरी।
यह मेरी कैसी मजबूरी!

३१

स्नेह ऐसा पला,
दीप ऐसा जला,
तम अगम मिट रहा
रोशनी छा रही।

ज़िन्दगी बह रही
तेज़ रफ़्तार से,
घात सब सह रही
एक पतवार से;

दूर तूफ़ान है,
पास अरमान है,
हर लहर नाचती,
नाव मुस्का रही।

पंथ कांटों-भरा,
लक्ष्य अनुमान है,
पर न मन है मरा,
पाँव गतिवान है;
डगमगाते कदम,
टूट पाता न दम,
बढ़ रहा है हृदय,
ज्योति बढ़ आ रही।

कल्पना के महल
टूट कर गिर रहे,
मुग्ध मधु स्वप्न-दल
सत्य से घिर रहे;
शेष होती कथा,
मिट रही है व्यथा,
शांति फिर मिल गई,
भ्रांति दुख पा रही।

हर कली खिल रही,
मुक्त मकरन्द है,
मधु सुरभि मिल रही,
मग्न अलि-वृन्द है;

प्रेम की फाँस में,
मुक्ति की साँस मे,
तान नभ ले रहा,
भूमि कुछ गा रही।

स्नेह ऐसा पला,
दीप ऐसा जला,
तम अगम मिट रहा,
रोशनी छा रही।

•

३२

टूट गये वे सपने सारे ।

यों तो जीने को काफ़ी थे
दुनिया के ही दुख जीवन में,
किन्तु न जाने किस आशा में
पाल लिये नभ के घन मन में;
बह निकले तब ही आँखो से
ये भोले आँसू बेचारे ।
टूट गये वे सपने सारे ।

यों तो आने को आयेंगे
जीवन में सुख के अनगिन दिन,
किन्तु कौन जाने तब तक मैं
ऊब उठूँ ये घडियाँ गिन-गिन;
अब तो छिप ही गये गगन के
झिलमिल झिलमिल करते तारे।
टूट गये वे सपने सारे।

मुक्ति न मिल पाई तृष्णा से
तृप्ति सदा ही दूर रही है,
यद्यपि फैली रही भुजाएँ,
मिलने से मजबूर रहीं हैं;
खिलने से पहले मुरझाये
सुमन नयन के ये रतनारे।
टूट गये वे सपने सारे।

●

३३

आज दुखी अन्तर रोता है ।
पीड़ा-सी अक्षय निधि पाकर जीवन का सब कुछ खोता है ।
आज दुखी अन्तर रोता है ।

जीवन में वैसे सब सुख है,
मिल न सका जो, उसका दुख है,
आँसू उमड़ चले, रीता यह नयनों का सागर होता है ।
आज दुखी अन्तर रोता है ।

मन की गाथा शेष हो चुकी,
अभिलाषाएँ कहीं खो चुकीं;
आज न जाने कौन हृदय में अनजाना विष-तरु बोता है।
आज दुखी अन्तर रोता है।

छाया ने हरदम भटकाया,
मिली सदा सपनों की माया;
जाग उठा है सुधियों का शिशु, खुशियों का आँगन सोता है।
आज दुखी अन्तर रोता है।

•

३४

पङ्खहीन हो चुका है विकल विहग जब,
उड़ने को उसने तभी ही व्योम पाया है.
बीत चुका यौवन सरस जब मानव का
तब सब ओर मधुमास यहाँ आया है,
काल का कुचक्र कुछ ऐसा ही है जगत में,
समय पर किसी ने न गीत दुहराया है,
जब तक खुले रहे दृग अन्धकार रहा,
दृग बन्द होने पर प्रकाश यहाँ छाया है।

•

३५

भूल हुई, जीवन में हमने किया किसी से प्यार।

उड़े कल्पना-पङ्ख पसारे
भू से निष्ठुर नभ की ओर,
पहुँच न पाये मञ्जिल तक हम,
टूट गई आशा की डोर;
व्यर्थ बसाया हमने वह प्रिय सपनों का संसार।
भूल हुई ..... ॥ १ ॥

हम, तुम सरिता के दो तट जो
मिलने को अकुलाते थे,
अपनी इन अनजान उमंगों
पर खुद ही इठलाते थे;
किन्तु सामने खड़ी हो गई जीवन की दीवार।
भूल हुई..... ..... ॥ २ ॥

आँख मिचौनी भी कर पाये
कब हम पल भर भी जग में ?
चुभे वेदना के काँटे ही
इस बेसुध उर के पग में;
आज अश्रु की ओट हुआ है नयनों का अभिसार।
भूल हुई..... ..... ॥ ३ ॥

●

३६

आओ, लौट चलें अपने घर ।
काँटों से पूरित यह धरती आग उगलता है यह अम्बर ।
आओ, लौट चलें अपने घर ।

आये थे यह सोच, यहाँ की
चहल-पहल में जी बहलेगा,
यह भी सोचा था, कुछ झंझट
यह मन हँस-हँस कर सह लेगा;
किन्तु ज्ञात था कब हमको, यह
मेला नहीं झमेला होता ?
साथ यहाँ रहते हैं सब ही,
फिर भी हृदय अकेला रोता;
सुख की एक लहर यदि आती, उमड़ तभी पड़ता दुख-सागर ।
आओ, लौट चलें अपने घर ।

खलता था हमको सूनापन
तब अपने घर के आँगन का,
आये थे दुनिया में क्योंकि
हमें लालच था इस सावन का;
सोच सके कब हम, इस धरती
पर भी सूनापन रहता है ?
जीवन नीरस रहता, केवल
नयनों में सावन रहता है;
देख लिया अब बहुत दिनों तक इस जग का मिथ्या आडम्बर।
आओ, लौट चलें अपने घर।

लोग कहेंगे कायर, हमको
इसकी कुछ परवाह नहीं है,
अब हमको झूठी हमदर्दी
पाने की भी चाह नहीं है;
लुटे-पिटे से बैठे रहना,
यह ही यदि साहस कहलाता,
तब तो अपने घर की सीमा
का सुख हमको अधिक लुभाता;
चल दें और न मुड़कर देखें, विदा यहाँ से लें न आह भर।
आओ, लौट चलें अपने घर।

*

कर न बैठना प्यार किसी से
भार यही है सब से भारी,
समय बहुत कम मिलता, फिर तो
होती चलने की तैयारी;
यहाँ निराशा का उपवन है,
अतः किसी से आस न बाँधो,
स्वयं तृषित रहने वालों से
अपने मन की प्यास न बाँधो;
यहाँ तो तुम्हें जल भी धोखा देगा मृगतृष्णा भड़काकर।
आओ, लौट चलें अपने घर।

यहाँ शांति का नाम नहीं है,
भ्रम है जीवन में सुख पाना,
फूल खिला करते दो पल ही,
फिर पड़ता उनको मुरझाना;
आँधी यहाँ चला करती नित
बहुत कठिन है पैर जमाना,
यहाँ सीखते है सब, जलना
केवल कुछ क्षण, फिर बुझ जाना;
चलो, जलाएँ दीपक घर में, यहाँ सदा बुझ जाने का डर।
आओ, लौट चलें अपने घर।

चांद और सूरज की दुनिया
बुला रही है हमें यहाँ से,
चलो, चलें हम वहाँ, हमें मिल
सकता है आलोक जहाँ से;
नया सवेरा मिले हमें यदि
कोई नई किरन मिल जाए,
तो शायद इस धरती पर भी
फिर से नई सुबह मुस्काए;
नई किरण कोई ले आएँ शायद हम इस तममय भू पर।
आओ, लौट चलें अपने घर।

●

३७

चमक रहा नभ में ध्रुवतारा।
भंवर पराजित हुए सभी हैं, पास आ रहा स्वयं किनारा।
चमक रहा नभ में ध्रुवतारा।

समय पुराना बीत गया है,
लहरों का संगीत नया है;
स्वयं मिल गया आज डूबते को तिनके का सुदृढ़ सहारा।
चमक रहा नभ में ध्रुवधारा।

आज चाँद विष नहीं उगलता,
आज नाव को ज्वार न छलता;
तूफानों ने आत्म-समर्पण किया, व्यथाओं का दल हारा।
चमक रहा नभ में ध्रुवतारा।

दीप जले है नया स्नेह पा,
सुमन खिले हैं नयी सुरभि पा;
सुरभि और आलोकमयी है विश्वोदय की निर्मल धारा।
चमक रहा नभ में ध्रुव तारा।

३८

प्यास की छाँह में,
दर्द की बाँह में,
पल रही जिन्दगी
एक ही आस में,
एक विश्वास में।

दर्द है, पीर है, टीस है, आह है,
जिन्दगी में घुटन, किन्तु उत्साह है,
राह काँटों-भरी, तम भरी है निशा,
किन्तु आशा-भरी दृष्टि खोजती दिशा;

विश्व ज्वाला नहीं,
है उजाला कहीं
जो बसा है सदा
एक उल्लास में,
एक मधुमास में।

लड़खड़ाता कभी, ऊब जाता कभी,
आँसुओं में हृदय डूब जाता कभी;
किन्तु तम भेदती है प्रकाश की किरन,
देख धूमिल सलिल दौड़ता मन-हिरन;

फिर मिले गत विभव,
जल उठे ज्योति नव,
इसलिये रत हृदय
एक ही प्रयास में,
सम रुदन-हास में।

यदि उठाना धरा को, झुकाना गगन,
तो क्षणिक तुष्टि में हम कभी न हों मगन;
है असम्भव न कुछ, लक्ष्य पाना सरल,
किन्तु पड़ता कभी पान करना गरल;

इसलिये जी रहा
और विष पी रहा,
बीतते कल्प युग,
एक उच्छ्वास में,
एक निःस्वास में।

प्यास की छाँह मे,
दर्द की बाँह में,
पल रही जिन्दगी
एक ही आस में,
एक विश्वास में।

•

३९

नैन पिघले, तुम्हारी याद आई,
अश्रु निकले, तुम्हारी याद आई,
याद भी क्या बला हुई जाती,
गीत मचले, तुम्हारी याद आई।

❀ ❀ ❀

तुमसे फिर प्यार न हो जाय कहीं,
रुष्ट संसार न हो जाय कहीं,
गीत गाता हूँ इस लिये ही मैं—
जिन्दगी भार न हो जाय कहीं।

४०

चाहता हूँ, याद कर लूँ आज अन्तिम बार तुमको ।

जब मिला परिचय तुम्हारा, हो गया यह जग अपरिचित,
प्राण के इस दीप ने तब कर लिया था स्नेह संचित,
किन्तु अब वह बात बीती,
हो गई ज्यो रात रीती,
स्वप्न में भी बाँध पाया था न यह संसार तुमको ।
चाहता हूँ ..... ।।१।।

जिन्दगी क्या जी कि पलभर भी न आँसू रोक पाया,
पंथ भी ऐसा मिला, पाथेय काँटों को बनाया;
अश्रु नयनों मे पले थे
जो कि पग-पग पर ढले थे;
मान पाया मैं न फिर भी दुःख का आधार तुमको ।
चाहता हूँ ..... ।।२।।

आज तो मुझ पर उठाते उँगलियाँ सब ही यहाँ पर,
किन्तु कल पाकर न मुझको ढूंढ पाएँगे कहाँ पर ?
चाहता कुछ बोल लूँ मैं,
भेद मन के खोल लूँ मैं;
और फिर अपने विरह का सौंप दूँ सब भार तुमको।
चाहता हूँ..... ....॥३॥

क्या पता यह याद मेरी चेतना का अन्त कर दे,
या तुम्हारी छबि दृगों में अश्रु-सिक्त बसंत भर दे;
इसलिए ही आज जी भर
गीत गा लूँ अश्रु पीकर;
फिर न आऊँगा यहाँ करने कभी भी प्यार तुमको।
चाहता हूँ... ....॥४॥

४१

गूंजती ध्वनि, टूट जाते तार जब भग्नाश मन के।

जब समीर विलास करता
मुक्ति सौरभ को न मिलती,
क्योंकि मधुऋतु की प्रतीक्षा
में निरत कलिका न खिलती;
किन्तु ऐसा समय आता
जब निरर्थक सुरभि होती,
और खिलती हर कली जब
हर सु-मन की आँख रोती;
गंध होती मुक्त, हैं जब पङ्ख थक जाते पवन के।
गूजती ध्वनि ..... ॥१॥

चमकता दिनमान दिन भर,
हर किरन शृंगार करती,
दूर करती तम किसी का
पर कहीं अंगार भरती;
चाँद-तारे डूब जाते
व्योम में तिरती उषा जब,
प्राण खुद से ऊब जाते
हृदय में घिरती निशा जब;
डूबता रवि जब. चमक उठते सभी तारे गगन के।
गूजती ध्वनि .....॥२॥

लौटता हर एक पंछी
घोंसले में रोज अपने,
खेलते बच्चे जहाँ हैं
देखते रगीन सपने;
जब थका-हारा विहग वह
नीड़ में है लौट आता
तब न कोई भी उसे है
गीत स्वागत के सुनाता;
चहकती बुलबुल उजड़ते नीड़ जब सारे चमन के।
गूंजती ध्वनि .....॥३॥

है दिया करती हृदय को
जब विवशता ही सहारा,
डूबती है नाव लेकिन
दूर ही रहता किनारा;

हर क़दम पर ठोकरें ही
जब किया करतीं प्रतीक्षा,
वेदनाएँ ही हमारे,
धैर्य की लेती परीक्षा;

अश्रु बहते चिह्न जब सब शेष हो जाते जलन के।
गूजती ध्वनि ······························ ॥४॥

जिन्दगी मे हम सँजोते
स्वप्न कितने ही सजीले,
पर नियति-कर शीघ्र करते
गात ढीले, पात पीले;

भावना घुटती हृदय में,
कल्पना सब छूट जाती
और जीवन की विवशता
कामना को लूट जाती;

जागते है हम तभी जब टूटते सपने नयन के।
गूजती ध्वनि ······························ ॥५॥

हम बढ़े जाते सदा ही,
लक्ष्य की चिन्ता न करते,
साथ कोई दे न दे पर
हम हृदय में भय न भरते

अगर जाते पास, होती
दूर छाया भी हमारी,
किन्तु ठुकराते पगों में
सिमट आती सृष्टि सारी;

प्यार की मञ्जिल बुलाती जब भुलाते पथ विजन के।
गूंजती ध्वनि...॥६॥

●

कवि–परिचय

शिवनाथ अरोरा

जन्म-तिथि:-२५ जून, १९२५.

शिक्षा:-एम० ए०

आजीविका:-प्राध्यापक, अंग्रेजी विभाग,
हिन्दू कॉलिज, मुरादाबाद ।

प्रकाशित पुस्तकें:-१. गीत नहीं ये (कविता-संग्रह)
२ गूँजती ध्वनि (,,)
३. सूर-परिचय (आलोचना)
४. पचरत्न (,,)